

## पाठ्यक्रम - २३

२३.अ

### सच्चे सुख का एक मात्र साधन - सम्यग्ज्ञान

जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित तथा अधिकता रहित, विपरीतता रहित, जैसा का तैसा, सन्देह रहित जानता है, उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं।

सम्यक् ज्ञान के आठ अंग होते हैं :- १. कालाचार, २. विनयाचार, ३. उपधान, ४. बहुमान, ५. अनिहनव,  
६. अर्थ शुद्धि ७. व्यज्जन शुद्धि एवं ८. अर्थ-व्यज्जन (तदुभय) शुद्धि।

**१. कालाचार** - आगम में वर्णित स्वाध्याय के काल में ही अध्ययन करना “कालाचार” कहलाता है। जैसे सन्धिकालों में, अष्टमी - चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में, सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण के काल में, अतिवृष्टि के साथ उल्कापात होने के काल में सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करना। परन्तु ऐसे समयों में भी अनुप्रेक्षात्मक स्वाध्याय कर सकते हैं।

**२. विनयाचार** - मन-वचन-काय से शास्त्र का विनय करना, आलस्य रहित होकर ज्ञान का ग्रहण करना अभ्यास और चिन्तन करना, जिनवाणी को उच्चासन पर विराजमान करना, शास्त्र पर वेष्टन लगाना, काय शुद्धि यानी हाथ-पैर धोकर ही ग्रन्थ को स्पर्श करना आदि “विनयाचार” है।

**३. उपधान** - स्वाध्याय प्रारंभ करने से लेकर पूर्ण होने तक खाद्य पदार्थ, भोगोपभोग आदि सामग्री का त्याग करना, विशेष नियम उपवासादि का नियम करना “उपधान अंग” है।

**४. बहुमान** - कर्म निर्जरा के हेतु, आचार्यों की वाणी का पूजा सत्कारादि से पाठ करना अर्थात् मंगलाचरण पूर्वक पवित्रता से हाथ जोड़कर, मन को एकाग्र कर, बड़े आदर के साथ ग्रन्थों का स्वाध्याय करना “बहुमान” नामक अंग है।

**५. अनिहनव** - अपने पढ़ाने वाले गुरु का तथा पढ़े हुए शास्त्र का नाम नहीं छिपाना, उसको सबके समक्ष प्रगट करना “अनिहनव” नामक सम्यक् ज्ञान का अंग है।

**६. अर्थ शुद्धि** - अर्थ शब्द का भाव शब्दोच्चारण के होने पर मन में जो अभिप्राय उत्पन्न होता है वह है। अतः संशय, विपर्यय, अनध्यवसायादि दोषों से रहित गणधरादि द्वारा रचित सूत्र के अर्थ का निरूपण करना “अर्थ शुद्धि” है।

**७. व्यज्जन शुद्धि** - उच्च उच्चार के समय उच्च उच्चारण करना एवं हस्त उच्चार के समय हस्त उच्चारण करना, वर्ण, पद वाक्य को शुद्ध पढ़ाना “व्यज्जन शुद्धि” है।

**८. अर्थ-व्यज्जन (तदुभय) शुद्धि** - अर्थ शुद्धि और व्यज्जन शुद्धि दोनों का पालन करते हुए स्वाध्याय करना अर्थात् व्यज्जन की शुद्धि और उसके वाच्य, अभिप्राय की जो शुद्धि है वह अर्थ-व्यज्जन नामा तदुभय शुद्धि है।

० सम्यक् ज्ञान पाँच प्रकार का है :- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान।

#### मतिज्ञान

पाँच इन्द्रियों और मन से जो पदार्थ का ग्रहण होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं। यह मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा के भेद से चार प्रकार का है।

**१. अवग्रह मतिज्ञान** - पदार्थ और इन्द्रिय का सम्बन्ध होने पर सर्वप्रथम दर्शन होता है उसके पश्चात् जो पदार्थ का ग्रहण होता है वह अवग्रह कहलाता है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ‘यह शुक्ल (सफेद) रूप है’ ऐसा ग्रहण करना अवग्रह है।

**२. ईहा मतिज्ञान** - अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गए पदार्थों में विशेष धर्म, गुण आदि जानने की इच्छा होना “ईहा” है। जैसे ग्रहण किया शुक्ल रूप ध्वजा है अथवा कोई पक्षी है इत्यादि।

**३. आवाय मतिज्ञान** - ईहा से जाने गये पदार्थ में सन्देह दूर हो कर निर्णयात्मक, यथार्थ ज्ञान होना ‘आवाय’ है। जैसे यह ऊपर-नीचे हो रहा है आगे बढ़ रहा है अतः श्वेत पक्षी ही है।

**४. धारणा मतिज्ञान** - आवाय से निर्णीत पदार्थ को कालान्तर में नहीं भूलने रूप “धारणा” मतिज्ञान है।

## श्रुतज्ञान

इन्द्रिय से ग्रहण किये गए विषय से विषयान्तर का ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। जैसे आँखों से नीला पेन देखा यह मतिज्ञान, यह पेन किस कम्पनी का है। यह किस काम आता है इसमें कौन-सी स्याही है इत्यादि का ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है।

## अवधिज्ञान

जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना, द्रव्य-क्षेत्र-कालभाव की मर्यादा को लिये रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इस अवधिज्ञान के छह भेद हैं :-

- (1) अनुगामी, (2) अननुगामी, (3) वर्धमान
- (4) हीयमान, (5) अवस्थित तथा (6) अनवस्थित।

जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (जीव) के साथ क्षेत्र से क्षेत्रान्तर, भव से भवान्तर जावे, उसे 'अनुगामी अवधिज्ञान' कहते हैं। जो अपने स्वामी के साथ न जावे, उसी क्षेत्र में ही छूट जावे उसे 'अननुगामी अवधिज्ञान' कहते हैं। जो शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक बढ़ता जाए उसे 'वर्धमान अवधिज्ञान' कहते हैं। जो कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक घटता जाय उसे 'हीयमान अवधिज्ञान' कहते हैं। जो सूर्यमण्डल के समान न घटे, न बढ़े, उसे 'अवस्थित अवधिज्ञान' कहते हैं। जो चन्द्रमण्डल की तरह कभी घटे और कभी बढ़े उसे 'अनवस्थित अवधिज्ञान' कहते हैं।

## मनः पर्ययज्ञान

जो इन्द्रियादिक बाह्य निमित्तों की सहायता के बिना ही दूसरे के मन में स्थित चिन्तित, अचिन्तित अथवा अर्ध चिन्तित अर्थात् भूतकाल में जिसका चिन्तन किया हो, जिसका भविष्य काल में चिन्तन किया जाएगा अथवा वर्तमान में जिसका चिन्तन किया जा रहा है। ऐसे रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है उसे मनः पर्ययज्ञान कहते हैं।

यह ज्ञान अद्वाई द्वीप में अर्थात् मनुष्यलोक में मुनियों को ही होता है।

## केवलज्ञान

जो समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायों को वर्तमान पर्याय की तरह स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं। उपरोक्त पाँच ज्ञानों में प्रथम तीन ज्ञान मति, श्रुत और अवधिज्ञान मिथ्यादृष्टि जीवों के आश्रय से मिथ्या भी होते हैं। इन मिथ्याज्ञानों को कुमति, कुश्रुत एवं कुअवधि (विभंग) ज्ञान कहा जाता है।

## अकृतपुण्य

भोगवती नगरी के राजा कामवृष्टि की रानी विष्टदाना के गर्भ में पापी बालक के आते ही राजा की मृत्यु हो गई और राजा के नौकर सुकृतपुण्य के हाथ में राज्य चला गया। माता ने बालक को पुण्य हीन समझकर उसका नाम 'अकृतपुण्य' रख दिया और परायी मजदूरी करके उसका पालन किया।

किसी समय बालक एक किसान के खेत पर काम करने के लिये चला गया। किसान ने उसे अपने भूतपूर्व स्वामी का पुत्र समझकर बहुत

## अकृतपुण्य

कुछ दीनारें दों किन्तु उसके हाथ में आते ही वे अंगारे हो गई। तब उसको उसकी इच्छानुसार चने दे दिए वे भी लोहे के बन गये। माता ने इस घटना से देश छोड़ दिया और सीमवाक गाँव के बलभद्र नामक जैन श्रावक के यहाँ भोजन बनाने का काम करने लगी।

सेठ के बालक को खीर खाते देखकर वह अकृतपुण्य भी खीर मांग करता था। तब एक दिन सेठ के लड़कों ने अकृतपुण्य को थप्पड़ों से मारा। सेठ ने उक्त घटना को जानकर बहन विष्टदाना को खीर बनाने के लिए चावल आदि सामान दे दिया। माता ने खीर बनाकर बालक से कहा बेटा, मैं पानी भरने जाती हूँ, इसी बीच मैं यदि कोई मुनिराज आवें तो उन्हें रोक लेना, मैं मुनिराज को आहार देकर तुझे खीर खिलाऊँगी।

भाग्य से सुव्रत मुनिराज उधर आ गये। बालक ने कहा मुनिराज! आप रुको, मेरी माँ ने खीर बनाई है, आपको आहार देंगी। मुनिराज के न रुकने से बालक ने जाकर उनके पैर पकड़ लिये और बोला देखूँ अब कैसे जाओगे?

उधर माता ने आकर पड़ाहन करके विधिवत् आहार दिया। बालक आहार देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था। मुनिराज अक्षीण ऋद्धिधारी थे। उस दिन खीर का भोजन समाप्त ही नहीं हुआ। तब विष्टदाना ने सपरिवार सेठ जी को, अनंतर सारे गांव को भोजन करा दिया। फिर भी खीर ज्यों की त्यों रही।

अगले दिन बालक बन में गाय चराने गया था। वहाँ उसने मुनि का उपदेश सुना। रात्रि में व्याघ्र ने उसे खा लिया। आहार देखने के प्रभाव से वह अकृतपुण्य मरकर स्वर्ग में देव हो गया।

**पुनः** उज्जयिनी नगरी के सेठ धनपाल की पत्नी प्रभावती के धन्य कुमार नाम का पुण्यशाली पुत्र हो गया। जन्म के बाद नाल गाड़ने के लिए जमीन खोदते ही धन का घड़ा निकला। धन्यकुमार जहाँ-जहाँ हाथ लगाता वहाँ धन ही धन हो जाता था। आगे चलकर यह धन्यकुमार नवनिधि का स्वामी हो गया और असीम धन-वैभव को भोगकर पुनः दीक्षा लेकर अंत में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद पाया। यह है आहार दान का प्रभाव, जिससे महापापी अकृतपुण्य धन्यकुमार हो गया।

## पाठ्यक्रम - २३

२३.ब

### कर्म क्षय का महत्वपूर्ण साधन- बारह तप

कर्मक्षय के लिए जो तपा जाता है, वह तप है। तप के मूल में दो भेद हैं – बाह्य तप और आध्यंतर तप।

**बाह्य तप** – बाह्य द्रव्य के आलम्बन से होता है और दूसरों के देखने में आता है, इसलिए इनको बाह्य तप कहते हैं।

आध्यंतर तप – आध्यंतर तप (अंतरङ्ग तप) प्रायश्चित्तादि तपों में बाह्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रहती है। अंतरंग परिणामों की मुख्यता रहती है तथा इनका स्वयं ही संवेदन होता है। ये देखने में नहीं आते तथा इसको अनार्हत (अजैन) लोग धारण नहीं कर सकते। इसलिए प्रायश्चित्तादि को अंतरङ्ग तप माना है।

**बाह्य तप छः होते हैं-** १. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्तिपरिसंख्यान, ४. रसपरित्याग, ५. विविक्तशश्यासन ६. कायक्लेश।

अशन का अर्थ है–आहार और अनशन का अर्थ है, चारों प्रकार के आहार का त्याग, यह एक दिन को आदि लेकर बहुत दिन तक के लिए किया जाता है। प्राणिसंयम व इन्द्रिय संयम की सिद्धि के लिए एवं कर्मों की निर्जरा के लिए अनशन तप किया जाता है। भूख से कम खाना अवमौदर्य नामक तप है। अवमौदर्य तप संयम को जागृत रखने, दोषों को प्रशम करने, संतोष और स्वाध्याय आदि की सुखपूर्वक सिद्धि के लिए किया जाता है।

जब मुनि आहार के लिए जाते हैं तो मन में संकल्प लेकर जाते हैं, जिसे आप लोग विधि कहते हैं। जैसे-एक कलश, दो कलश से पड़गाहन होगा तो जाएंगे नहीं तो नहीं। एक मुहल्ला, दो मुहल्ला तक ही जाऊँगा। यह वृत्तिपरिसंख्यान तप है। ऐसा करें ही, यह नियम नहीं है।

वृत्तिपरिसंख्यान तप आशा की निवृत्ति के लिए, अपने पुण्य की परीक्षा के लिए एवं कर्मों की निर्जरा के लिए किया जाता है। धी, दूध, दही, शक्कर, नमक, तेल, इन छः रसों में से एक या सभी रसों का त्याग करना रस परित्याग तप है। अथवा वनस्पति, दाल, रस परित्याग तप रसना इन्द्रिय को जीतने के लिए, निद्रा व प्रमाद को जीतने के लिए, स्वाध्याय की सिद्धि के लिए एवं कर्मों की निर्जरा के लिए किया जाता है।

स्वाध्याय, ध्यान आदि की सिद्धि के लिए एकान्त स्थान पर शयन करना, आसन लगाना, विविक्तशश्यासन तप है।

विविक्तशश्यासन तप चित्त की शांति के लिए, निद्रा को जीतने के लिए एवं कर्मों की निर्जरा के लिए किया जाता है।

शरीर को सुख मिले ऐसी भावना को त्यागना कायक्लेश तप है। अथवा वर्षाक्रृतु में वृक्ष के नीचे, ग्रीष्म क्रृतु में धूप में बैठकर तथा शीत क्रृतु में नदी तट पर कायोत्सर्ग करना, ध्यान लगाना कायक्लेश तप है।

कायक्लेश तप से कष्टों को सहन करने की क्षमता आती है, जिनशासन की प्रभावना होती है एवं कर्मों की निर्जरा हो इसलिए किया जाता है।

**अंतरङ्ग तप छः होते हैं।** १. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. व्युत्सर्ग ६. ध्यान।

१. प्रमाद जन्य दोष का परिहार करना प्रायश्चित्त तप है। व्रतों में लगे हुए दोषों को प्राप्त हुआ साधक, जिससे पूर्व किए अपराधों से निर्दोष हो जाय वह प्रायश्चित्त तप है।

२. मोक्ष के साधनभूत सम्यग्ज्ञानादिक में तथा उनके साधक गुरुआदि में अपनी योग्य रीति से सत्कार आदि करना विनय तप है।

३. अपने शरीर व अन्य प्रासुक वस्तुओं से मुनियों व त्यागियों की सेवा करना, उनके ऊपर आई हुई आपत्ति को दूर करना, वैयावृत्य तप है।

४. “ज्ञानभावनालस्यत्यागः स्वाध्यायः” आलस्य त्यागकर ज्ञान की आराधना करना, स्वाध्याय तप है। अथवा २. अङ्ग और अङ्गबाह्य आगम की वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मकथा करना, स्वाध्याय तप है।

५. अहंकार ममकार रूप संकल्प का त्याग करना ही, व्युत्सर्ग तप है।

६. उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है, जो अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

## अध्यात्म दोहावली

जीवन समझो मोल है, ना समझो तो खेल ।  
 खेल-खेल में युग गया, वही खिलाड़ी खेल ॥ 1 ॥  
 खेल सको तो खेल लो, एक अनोखा खेल ।  
 आप खिलाड़ी आप ही, बनो खिलौना खेल ॥ 2 ॥  
 किस-किस का कर्ता बनूँ, किस-किस का मैं कार्य ।  
 किस-किस का कारण बनूँ, यह सब क्यों कर आर्य ॥ 3 ॥  
 पर का कर्ता मैं नहीं, मैं क्यों पर का कार्य ।  
 कर्ता कारण कार्य हूँ, मैं निज का अनिवार्य ॥ 4 ॥  
 घुट-घुट कर क्यों जी रहा, लुट-लुट कर क्यों दीन ।  
 अन्तर्घट में हो जरा, सिमट-सिमट कर लीन ॥ 5 ॥  
 खोया जो है अहम में, खोया उसने मोल ।  
 खोया जिसने अहम को, खोजा धन अनमोल ॥ 6 ॥  
 यान करे बहरे इधर, उधर यान में शांत ।  
 कोरा कोलाहल यहाँ, भीतर तो एकांत ॥ 7 ॥  
 स्वर्ण बने वह कोयला, और कोयला स्वर्ण ।  
 पाप-पुण्य का खेल है, आतम में ना वर्ण ॥ 8 ॥  
 प्रमाण का आकार ना, प्रमाण में आकार ।  
 प्रकाश का आकार ना, प्रकाश में आकार ॥ 9 ॥  
 जिनवर आँखें अधखुली, जिनमें झलके लोक ।  
 आप दिखे सब देख ना, स्वस्थ रहे उपयोग ॥ 10 ॥

अलख जगाकर देख ले, विलख विलख मत हार ।  
 निरख निरख निज को जरा, हरख हरख इस बार ॥ 11 ॥  
 कर्तापन की गंध बिन, सदा करे कर्तव्य ।  
 स्वामीपन ऊपर धरे, ध्रुव पर हो मन्तव्य ॥ 12 ॥  
 चेतन में ना भार है, चेतन की ना छाँव ।  
 चेतन की फिर हार क्यों, भाव हुआ दुर्भाव ॥ 13 ॥  
 धन जब आता बीच में, वतन सहज हो गौण ।  
 तन जब आता बीच में, चेतन होता मौन ॥ 14 ॥  
 फूल राग का धर रहा, काँटा रहा विराग ।  
 तभी फूल का पतन हो, राग त्याग तू जाग ॥ 15 ॥  
 मोह दुखों का मूल है, धर्म सुखों का स्रोत ।  
 मूल्य तभी पीयूष का, जब हो विष से मौत ॥ 16 ॥  
 पर घर में क्यों घुस रही, निज घर तज यह भीड़ ।  
 पर नीड़ों में कब घुसा, पछी तज निज नीड़ ॥ 17 ॥  
 विषय-विषम विष है मुनो, विष सेवन से मौत ।  
 विषय-कषाय विसार दो, स्वानुभूति सुख स्रोत ॥ 18 ॥  
 हल्का लगता जल भरा, घट भी जल में जान ।  
 दुख-सुख-सा अनुभूत हो, हो जब आतम ज्ञान ॥ 19 ॥  
 कुन्दकुन्द को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय ।  
 परम सुगंथित महक में, जीवन मम घुल जाय ॥ 20 ॥

### आत्मा त्रैकालिक शुद्ध नहीं

एक यह चर्चा चलती है कि द्रव्य सदा शुद्ध रहता है। अशुद्धता तो पर्याय में आती है। ऐसी मिथ्या मान्यता का निराकरण करने वाली निष्प घटना है। एक मुमुक्षु हमेशा व्याख्यान में एकांत से कहा करते थे कि हमारी आत्मा सिद्ध के समान शुद्ध है, उनके साथ एक छोटी बच्ची थी। एक सज्जन ने उस बच्ची से कहा- माँ! इधर आना। उन मुमुक्षु भाई ने कहा- यह अभी बच्ची है, माँ नहीं।

वह सज्जन बोले- वह आगे तो माँ बनेगी। जब आगे माँ बनना ही है तो अभी माँ कहने में क्या हर्ज है? उन्होंने कहा- आप कैसी बातें करते हैं? तो वह सज्जन बोले- आप भी तो वर्तमान में कर्मकलंक से दूषित आत्मा को शुद्ध कहते हैं। अगर भोगी आत्मा भोग भोगते हुए शुद्ध हो सकती है ऐसा कहते हैं तो नहीं बालिका भी माँ कही जा सकती है। मुमुक्षु ने कहा- पर ऐसा कहने से तो लोक व्यवहार का लोप हो जाएगा। उन्होंने कहा- वैसे ही संसारी आत्मा को शुद्ध मान लेने से मोक्ष मार्ग के पुरुषार्थ का लोप हो जाएगा। यहाँ विचार करने की बात यह है कि क्या द्रव्य व पर्याय के प्रदेश जुदे-जुदे हैं? नहीं। जब दोनों के प्रदेश एक हैं तो द्रव्य शुद्ध रहा आवे और पर्याय अशुद्ध यह बन नहीं सकता। जीव और पुद्गल अपनी वैभाविक शक्ति के कारण एक-दूसरे से प्रभावित हो अशुद्ध परिणमन करते हैं। अशुद्ध परिणमन के काल में जीव रागादि विकारी भावों से दूषित होता है और पुद्गल द्रव्य कर्म रूपी पर्याय को ग्रहण करता है। यह सत्य है कि जीव कभी कर्म रूप और कर्म कभी जीवरूप परिणमन नहीं कर सकता। परंतु मोहनीय कर्म की उदयावस्था का निमित्त पाकर जीव अपने उपादान से मिथ्यात्व तथा रागादि रूप परिणमन करता है और जीव के परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल कर्म रूप परिणमन करता है। इतना होने पर भी द्रव्य को जो शुद्ध कहा जाता है। उसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। जैसे तांबा आदि धातु के मिश्रण से स्वर्ण अशुद्ध कहलाने लगता है किंतु अपने स्वभाव से च्युत नहीं होता। ठीक इसी प्रकार जीव द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म के संबंध से अशुद्ध कहा जाता है परंतु उस अशुद्ध दशा में भी जीव अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से रहित नहीं होता। राग-द्वेष का निमित्त दूर होने पर वह शुद्ध वीतराग हो जाता है।

जानासि त्वं, मम भवभवे, यच्च यादृक्च दुःखं, जातं यस्य, स्मरणमपि मे, शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।

त्वं सर्वेशः, सकृप इति च, त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या, यत्कर्तव्यं, तदिह विषये, देव एव प्रमाणम्॥११॥

अर्थ : ( देव! ) हे भगवन् ! ( मम ) मुझे ( भवभवे ) प्रत्येक पर्याय में ( यत् च यादृक् च ) जो और जैसा-जिस तरह का ( दुःखम् ) दुःख-कष्ट ( जातम् ) प्राप्त हुआ है ( तत् त्वं जानासि ) उसको आप जानते ही हैं। और ( यस्य ) जिसका ( स्मरणं अपि ) स्मरण भी ( मे ) मेरे लिए ( शस्त्रवत् ) शस्त्र के समान-तलवार आदि अस्त्र के घात समान ( निष्पिनष्टि ) दुःख देता है और हे नाथ ! ( त्वम् ) आप ( सर्वेशः ) सबके स्वामी ( च ) और ( सकृपः ) दया से युक्त हैं-दयालु हैं। ( इति ) इसलिए ( भक्त्या ) भक्तिपूर्वक ( त्वाम् उपेतः अस्मि ) आपके पास आया हूँ-आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ। अतः अब ( इह विषये ) इस विषय में ( यत् कर्तव्यं ) जो करना चाहिए उसमें ( देवः एव प्रमाणम् ) आप देव ही प्रमाण हैं। अर्थात् जैसा आप चाहें वैसा करें।

प्रापदैवं, तव नुतिपदै, जीवकेनोपदिष्टैः, पापाचारी, मरणसमये, सारमेयोऽपि सौख्यम्।

कः सन्देहो, यदुपलभते, वासवश्रीप्रभुत्वं, जल्पन्-जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥१२॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र ! जबकि ( मरणसमये ) मृत्यु के समय में ( जीवकेन ) जीवन्धरकुमार के द्वारा ( उपदिष्टैः ) बताए गए ( तव नुतिपदैः ) आपके नमस्कार मंत्र के पदों से ( पापाचारी ) पापरूप प्रवृत्ति करने वाला ( सारमेयः अपि ) कुत्ता भी ( दैवं ) देव-स्वर्गलोक सम्बन्धी ( सौख्यम् ) सुख को ( प्राप्त ) प्राप्त हुआ था। तब ( अमलैः जाप्यैः मणिभिः ) निर्मल जपने योग्य माला की मणियों के द्वारा ( त्वन्नमस्कारचक्रम् ) आपके नमस्कारमंत्र के समूह को ( जल्पन् ) जपता हुआ ( यत् ) जो मनुष्य ( वासवश्रीप्रभुत्वम् ) इन्द्र की विभूति के अधिपतित्व को-स्वामीपने को ( लभते ) प्राप्त होता है। इस विषय में ( कः सन्देहः ) क्या सन्देह है ?

शुद्धे ज्ञाने, शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा, भक्तिर्नो चे, दनवधिसुखा, वज्ज्वका कुञ्ज्वकेयम्।

शक्योद्घाटं, भवति हि कथं, मुक्तिकामस्य पुंसो, मुक्तिद्वारं, परिदृढ़महा, मोहमुद्राकवाटम्॥१३॥

अर्थ : हे नाथ ! ( शुद्धे ज्ञाने ) शुद्ध ज्ञान और ( शुचिनि चरिते ) निर्मल चारित्र के ( सत्यापि ) रहते हुए भी ( चेत् ) यदि ( त्वयि ) आपके विषय में होने वाली ( इयम् ) यह ( अनीचा भक्तिः ) उत्कृष्ट भक्तिरूपी ( अनवधिसुखा-वज्ज्वका ) असीम सुख प्राप्त कराने वाली ( कुञ्ज्वका ) कुञ्जी-चाबी ( नो चेत् ) नहीं होते, तो ( हि ) सचमुच में ( मुक्तिकामस्य पुंसः ) मोक्ष के अभिलाषी पुरुष को ( परिदृढ़महामोहमुद्राकवाटम् ) अत्यन्त मजबूत महामोह रूपी मुहरबन्द ताले से युक्त हैं किवाड़ जिसमें ऐसे ( मुक्तिद्वारम् ) मोक्ष के द्वार को ( कथम् ? ) किस तरह ( शक्योद्घाटम् ) खोला जा सकता है ? अर्थात् नहीं खोला जा सकता।

प्रच्छन्नः खल्वयमधमयै, रन्धकारैः समन्तात्, पन्था मुक्तेः स्थपुटितपदः, क्लेशगर्त्तेरगाधैः।

तत्कस्तेन, व्रजति सुखतो, देव तत्त्वावभासी, यद्यग्रेऽग्रे, न भवति भवद्, भारती रत्नदीपः॥१४॥

अर्थ : ( देव! ) हे स्वामिन् ! ( खलु ) निश्चय से ( अयम् ) यह ( मुक्तेः पन्थाः ) मोक्ष का मार्ग ( अघमयैः अन्धकारैः ) पापरूपी अन्धकार के द्वारा ( समन्तात् ) सब ओर से ( प्रच्छन्नः ) ढका हुआ है और ( अगाधैः ) गहरे ( क्लेशगर्त्तेः ) दुःखरूपी गड़ों से ( स्थपुटितपदः ) ऊँचे-नीचे स्थान वाला ( यदि ) अगर ( तत्त्वावभासी ) सप्ततत्त्वों को प्रकाशित करने वाला ( भवद्भारती-रत्नदीपः ) आपकी दिव्यध्वनिरूपी रत्नों का दीपक ( अग्रे-अग्रे ) आगे-आगे ( न भवति ) न होता ( तत् ) तो ( तेन ) उस मार्ग से ( कः ) कौन मनुष्य ( सुखतः ) सुखपूर्वक ( व्रजति ) गमन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

आत्मज्योति, निर्धिरनवधि, द्रष्टुरानन्द हेतुः, कर्मक्षोणी, पटलपिहितो, योऽनवाप्यः परेषाम्।

हस्ते कुर्वन्तिचिरतस्, तं भवद्भक्तिभाजः, स्तोत्रै बन्ध, प्रकृतिपरुषोद् दामधात्रीखनित्रैः॥१५॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र ! ( आत्मज्योतिर्निर्धिः ) यह आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति ( कर्मक्षोणीपटलपिहितः ) ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप

पटलों से आच्छादित है-ढकी हुई है और ( यः द्रष्टुः आनन्दहेतुः ) जो ज्ञानी पुरुष को आनन्द का कारण है इसलिए ( परेषां अनवाप्यः ) मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अप्राप्त है, उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती किन्तु ( भवद्भक्तिभाजः ) आपकी भक्ति करने वाले भव्य पुरुष ( तं ) उस आत्म ज्ञानरूप सम्पत्ति को ( बन्ध-प्रकृतिपरुषोद्गमधात्री खनित्रैः ) प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्धरूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप ( स्तोत्रैः ) आपके स्तवनों के द्वारा ( अनतिचिरतः ) शीघ्र ही ( हस्ते कुर्वन्ति ) अपने हाथ में कर लेते हैं- उसे प्राप्त कर लेते हैं।

**प्रत्युत्पन्ना, नयहिमगिरे, रायता चामृताब्धेर्, या देव, त्वत्पदकमलयोः, सङ्गता भक्तिगङ्गा ।**

**चेतस्तस्यां, मम रुचिवशा, दाप्लुतं क्षालितांहः, कल्माषं यद्यभवति किमियं, देव सन्देहभूमिः ॥१६ ॥**

**अर्थ :** ( देव! ) हे नाथ ! ( नयहिमगिरे : ) स्याद्वाद नयरूप हिमालय पर्वत से ( प्रत्युत्पन्ना ) उत्पन्न हुई ( च ) और ( अमृताब्धे : ) मोक्षरूपी समुद्र तक ( आयता ) लम्बी ( या ) जो यह ( त्वत्पदकमलयोः ) आपके चरण कमल सम्बन्धी ( भक्तिगङ्गा ) भक्तिरूपी गंगानदी ( सङ्गता ) प्राप्त हुई है ( तस्यां ) उसमें ( रुचिवशात् ) प्रेम के वश ( आप्लुतम् ) डूबा हुआ ( मम ) मेरा ( चेतः ) मन ( यत् ) जो ( क्षालितांहः कल्माषं ) जिसकी पापरूपी कालिमा धुल गई है-ऐसा पापरूपी रज से रहित ( भवति ) हो जाता है ( देव! ) हे नाथ ! ( इयम् ) यह ( किम् ) क्या कोई ( सन्देहभूमिः ) सन्देह का स्थान है ? अर्थात् नहीं है।

**प्रादुर्भूत, स्थिरपदसुख, त्वामनुध्यायतो मे, त्वच्येवाहं, स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा ।**

**मिथ्यैवेयं, तदपि तनुते तृप्तिमध्रेषरूपां, दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्, त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७ ॥**

**अर्थ :** ( प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख ! ) जिनके स्थायी सुख प्रकट हुआ है ऐसे हे वीतरागदेव ( त्वाम अनुध्यायतः मे ) आपका बार-बार ध्यान करने वाले मेरे हृदय में ( त्वयि ) आपमें अथवा आपके विषय में ( अहं सः एव ) जो आप हैं वही मैं हूँ ( इति ) ऐसी जो ( निर्विकल्पा ) विकल्प रहित ( मतिः ) बुद्धि ( उत्पद्यते ) उत्पन्न होती है यद्यपि ( इयम् मिथ्या एव ) यह बुद्धि असत्य ही है ( तदपि ) तो भी ( अध्रेषरूपां तृप्तिं ) निश्चल अविनाशी सन्तोष सुख को ( तनुते ) विस्तृत करती है। सच है ( त्वत्प्रसादात् ) आपके प्रसाद से ( दोषात्मानः अपि ) सदोषी पुरुष भी ( अभिमतफलाः ) इच्छित फल को प्राप्त ( भवन्ति ) होते हैं।

**मिथ्यावादं, मलमपनुदन्, सप्तभङ्गीतरङ्गैर्, वागम्भोधि-, भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते ।**

**तस्यावृत्तिं, सपदि विबुधाश्, चेतसैवाचलेन, व्यातन्वन्तः, सुचिरममृता, सेवया तृप्तुवन्ति ॥१८ ॥**

**अर्थ :** ( देव ! ) हे स्वामिन् ! ( ते ) आपका ( यः ) जो ( वागम्भोधिः ) दिव्यध्वनिरूपी समुद्र ( सप्तभङ्गीतरङ्गैः ) सप्तभंग रूप लहरों के द्वारा [ स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य ] ( मिथ्यावादं मलं ) सर्वथा एकान्त कदाग्रह मिथ्यात्वरूप मल को ( अपनुदन् ) हटाता हुआ ( अखिलं भुवनं ) समस्त संसार को ( पर्येति ) धेरे हुए हैं-समस्त संसार में व्याप्त है। ( विबुधाः ) देव अथवा बुद्धिमान ( चेतसा एव अचलेन ) मनरूपी मन्दारगिरि के द्वारा ( तस्य ) उस वचनरूप समुद्र का ( आवृत्तिम् ) मन्थन क्रिया अथवा बार-बार अभ्यास को ( व्यातन्वन्तः ) विस्तृत करते हुए ( सपदि ) शीघ्र ही ( अमृतासेवया ) अमृत के सेवन से- मोक्ष प्राप्ति से ( सुचिरं ) चिरकाल तक ( तृप्तुवन्ति ) संतुष्ट हो जाते हैं।

देशों में देश हिन्दुस्तान सा नहीं।  
धर्मों में धर्म जैन धर्म सा नहीं।  
गुरुओं में गुरु शान्तिसागर सा नहीं।  
आचार्यों में आचार्य विद्यासागर सा नहीं।  
मंत्रों में मंत्र णमोकार सा नहीं।  
क्षेत्रों में क्षेत्र सम्मेदशिखर सा नहीं।  
देवों में देव जिनदेव सा नहीं।  
ग्रंथों में ग्रंथ समयसार सा नहीं।



भगवान तुम्हें मैं खत लिखती पर पता मुझे मालूम नहीं।  
मैंने बाग में पूछा माली से और खेत में पूछा हाली से।  
हाली ने कहा-२ इस मिट्टी में, पर पता मुझे मालूम नहीं।

भगवान... ॥

मैंने चाँद से पूछा सूरज से, और पूछा गगन के तारों से।  
तारों ने कहा-२ इस अम्बर में, पर पता मुझे मालूम नहीं।

भगवान... ॥

मैंने गंगा से पूछा यमुना से, और पूछा गहरे सागर से।  
सागर ने कहा-२ इस पानी में पर पता मुझे मालूम नहीं।

भगवान... ॥

## तत्त्वार्थ सूत्र

मोक्ष - मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।  
ज्ञातारं विश्व - तत्त्वानां वन्दे तद् गुण लब्धये ॥

### अथ प्रथमोऽध्यायः

सम्पर्दर्शन-ज्ञान-, चारित्रिणि, मोक्षमार्गः ॥१ ॥ तत्त्वार्थं शब्दानं, सम्पर्दर्शनम् ॥२ ॥ तन्-निसर्गा-दधिगमाद्-वा ॥३ ॥ जीवा-जीवास्वव-बन्ध संवर निर्जरा, मोक्षास्-तत्त्वम् ॥४ ॥ नाम स्थापना, द्रव्य भावतस्-तन्-न्यासः ॥५ ॥ प्रमाणनयै-रधिगमः ॥६ ॥ निर्देश स्वामित्व, साधनाधिकरण, स्थिति विधानतः ॥७ ॥ सत् संख्या, क्षेत्र स्पर्शन, कालान्तर, भावाल्प-बहुत्वैश्च ॥८ ॥ मति श्रुतावधि, मनःपर्यय, केवलानि, ज्ञानम् ॥९ ॥ तत्, प्रमाणे ॥१० ॥ आद्ये, परोक्षम् ॥११ ॥ प्रत्यक्ष-मन्यत् ॥१२ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा, चिन्ताऽभिनिबोध, इत्य-नर्थान्तरम् ॥१३ ॥ तदिन्द्रियाऽ-निन्द्रिय, निमित्तम् ॥१४ ॥ अवग्रहे- हावाय, धारणाः ॥१५ ॥ बहु बहुत्वैश्च, क्षिप्राऽनिःसृताऽ-नुक्त ध्रुवाणां, सेतराणाम् ॥१६ ॥ अर्थस्य ॥१७ ॥ व्यञ्जनस्याव- ग्रहः ॥१८ ॥ न चक्षु-, रनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९ ॥ श्रुतं मतिपूर्व, द्वयनेक द्वादश, भेदम् ॥२० ॥ भवप्रत्ययोऽवधि-, देवनारकाणाम् ॥२१ ॥ क्षयोपशम-निमित्तः, षड्-विकल्पः, शेषाणाम् ॥२२ ॥ ऋजु-विपुलमती, मनःपर्ययः ॥२३ ॥ विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां, तद्-विशेषः ॥२४ ॥ विशुद्धि क्षेत्र स्वामि, विषयेभ्योऽवधि, -मनःपर्यययोः ॥२५ ॥ मतिश्रुतयो-र्निबन्धो, द्रव्येष्व-सर्व-, पर्यायेषु ॥२६ ॥ रूपिष्व-वधेः ॥२७ ॥ तदनन्त-भागे, मनःपर्ययस्य ॥२८ ॥ सर्वद्रव्य-पर्यायेषु, केवलस्य ॥२९ ॥ एकादीनि भाज्यानि, युगपदे-कस्मिन्ना, चतुर्भ्यः ॥३० ॥ मति-श्रुतावधयो, विपर्ययश्च ॥३१ ॥ सद-सतो-र-विशेषाद्-यदृच्छेष-लब्धे-, रूप्त्वात् ॥३२ ॥ नैगम संग्रह, व्यवहा-र्जुसूत्र, शब्द समभिसृष्टै-, वभूता, नयाः ॥३३ ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१ ॥

### अथ द्वितीयोऽध्यायः

औपशमिक क्षायिकौ, भावौ मिश्रश्च, जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक- पारिणामिकौ च ॥१ ॥ द्वि नवाष्टा-दशैकविंशति त्रि भेदाः, यथाक्रमम् ॥२ ॥ सम्यक्त्व, चारित्रे ॥३ ॥ ज्ञान दर्शन, दान लाभ, भोगोप-भोग, वीर्याणि च ॥४ ॥ ज्ञाना-ज्ञान, दर्शन लब्धयश-, चतुर्स्-त्रि त्रि, पञ्च भेदाः, सम्यक्त्व चारित्र, संयमासंयमाश्च ॥५ ॥ गति कषाय लिंग, मिश्यादर्शना-ज्ञाना-, संयता-सिद्ध लेश्याश्, चतुर्श-चतुर्स्-, त्र्य-कै-कै-कैक, षड् भेदाः ॥६ ॥ जीव भव्या-, भव्यत्वानि च ॥७ ॥ उपयोगे, लक्षणम् ॥८ ॥ स, द्वि-विधोऽष्ट- , चतु-र्भेदः ॥९ ॥ संसारिणो, मुक्ताश्च ॥१० ॥ समनस्काऽ-मनस्काः ॥११ ॥ संसारिणस्-त्रस स्थावराः ॥१२ ॥ पृथि-व्यप्-तेजो-वायु वनस्पतयः, स्थावराः ॥१३ ॥ द्वीन्द्रियादयस्-त्रसाः ॥१४ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५ ॥ द्वि, विधानि ॥१६ ॥ निर्वृत्त्युप-करणे, द्रव्येन्द्रियम् ॥१७ ॥ लब्ध्युप-योगौ, भावेन्द्रियम् ॥१८ ॥ स्पर्शन रसन ग्राण, चक्षुःश्रोत्राणि ॥१९ ॥ स्पर्श रस गन्ध, वर्ण शब्दास्- तदर्थः ॥२० ॥ श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥२१ ॥ वनस्पत्यन्ताना-, मेकम् ॥२२ ॥ कृमि पिपीलिका, भ्रमर मनुष्यादीना-, मेकैक वृद्धानि ॥२३ ॥ संज्ञिनः, समनस्काः ॥२४ ॥ विग्रह-गतौ, कर्म योगः ॥२५ ॥ अनुश्रेणि, गतिः ॥२६ ॥ अविग्रहा, जीवस्य ॥२७ ॥ विग्रहवती च, संसारिणः, प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८ ॥ एकसमयाऽ-विग्रहा ॥२९ ॥ एकं द्वौ, त्रीन्-वाऽ-नाहारकः ॥३० ॥ सम्मूच्छ्वर्ण, गर्भोप-पादा, जन्म ॥३१ ॥ सचित शीत, संवृता: सेतरा, मिश्राश-चैकशस्-तद्-योनयः ॥३२ ॥ जरायु-जाण्डज, पोतानां, गर्भः ॥३३ ॥ देव नारकाणा-, मुपपादः ॥३४ ॥ शेषाणां, सम्मूच्छ्वर्णम् ॥३५ ॥ औदारिक वैक्रियि-, काहारक तैजस, कार्मणानि, शरीराणि ॥३६ ॥ परं परं, सूक्ष्मम् ॥३७ ॥ प्रदेशतोऽ-संख्येय-गुणं, प्राक् तैजसात् ॥३८ ॥ अनन्त गुणे, परे ॥३९ ॥ अप्रतीघाते ॥४० ॥ अनादि, सम्बन्धे च ॥४१ ॥ सर्वस्य ॥४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि, युगपदे-कस्मिन्ना, चतुर्भ्यः ॥४३ ॥ निरुप-भोग-, मन्यम् ॥४४ ॥ गर्भ-सम्मूच्छ्वर्णज-माद्यम् ॥४५ ॥ औपपादिकं, वैक्रियिकम् ॥४६ ॥ लब्ध्य, प्रत्ययं च ॥४७ ॥ तैजस-, मणि ॥४८ ॥ शुभं विशुद्ध-मव्याधाति, चाहारकं, प्रमत्त-संयतस्यैव ॥४९ ॥ नारक सम्मूच्छ्वर्णो-, नपुंसकानि ॥५० ॥ न देवाः ॥५१ ॥ शेषास्-त्रि वेदाः ॥५२ ॥ औपपादिक, चरमोत्तमदेहाऽ-संख्येय-वर्षायुषोऽ-नप-वर्त्यायुषः ॥५३ ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२ ॥

## चन्द्रगुप्त मुनि द्वारा गुरुसेवा

श्री भद्रबाहु आचार्य 12,000 मुनियों के साथ दक्षिण की ओर चले गए। वहाँ स्वाध्याय को सम्पन्न करने के लिए एक महावन के भीतर निषीधिका पूर्वक इसी गुफा में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्हें “यहाँ पर ठहरो” यह आकाशवाणी सुनाई दी। इससे भद्रबाहु ने यह निश्चय किया कि अब मेरी आयु बहुत थोड़ी शेष रही है। तब उन्होंने 11 अंगों के धारक अपने विशाखाचार्य नामक शिष्य को संघ का नायक बनाकर उसके साथ संघ को आगे भेज दिया। उस संघ के साथ वे चन्द्रगुप्तमौर्य ( प्रभाचन्द्र ) को भी भेजना चाहते थे। परन्तु उन्होंने यह आगम वाक्य सुन रखा था कि बारह वर्ष तक गुरु के चरणों की सेवा करनी चाहिए इसलिए एक अकेले वहाँ रह गए शेष सब चले गए।

उधर भद्रबाहु ने सन्यास ग्रहण कर लिया तब वे चार आराधनाओं की आराधना-समाधि करते हुए स्थित रहे। चन्द्रगुप्त उस समय उपवास करते हुए उनके पास में स्थित थे। उस समय भद्रबाहुस्वामी ने चन्द्रगुप्त से कहा कि हे मुने! हमारे दर्शन में ( जैन आगम में ) कान्तारचर्या का मार्ग है। वन में आहार ग्रहण करने का विधान है, इसलिए तुम कुछ वृक्षों के पास तक चर्या के लिए जाओ। यदि अयोग्य नहीं तो गुरु के बचन का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए, यह सोचकर चन्द्रगुप्त मुनि उनकी आज्ञानुसार चर्या के लिए चले गये।

उस समय उनके चित्त की परीक्षा करने के लिए एक पक्षी ने स्वयं अदृश्य रहकर सुवर्णमय कंगन विभूषित हाथ में करछिली और उस दाल एवं धी आदि से संयुक्तशाली धान का भात दिखलाया। उसको देखकर मुनि ने विचार किया कि इस प्रकार का आहार लेना योग्य नहीं है। इस प्रकार वे बिना आहार लिये ही वापस चले गए और वापस जाकर उन्होंने गुरु के पास में उपवास को ग्रहण करते हुए उनसे उपर्युक्त घटना कह दी।

गुरु ने चन्द्रगुप्त के पुण्य के माहात्म्य को जानकार उनसे कहा कि तुमने यह योग्य ही किया है। दूसरे दिन चन्द्रगुप्त आहार के निमित्त दूसरी ओर गए। उधर उन्हें रसोई, बर्तन, सुवर्णमय थाली और पानी का घड़ा आदि दिखा परन्तु पड़गाहन करने वाला वहाँ कोई नहीं था। इसलिए वे दूसरे दिन भी बिना आहार ग्रहण किए ही वापस आ गए। आज की घटना भी उन्होंने गुरुसे कह दी इस पर गुरुने कहा कि बहुत अच्छा किया तत्पश्चात् तीसरे दिन वे किसी दूसरी ओर गये वहाँ उनका पड़गाहन केवल एक ही स्त्री ने किया तब चन्द्रगुप्त मुनि ने उससे कहा कि तुम अकेली हो और इधर मैं भी अकेला हूँ ऐसी अवस्था में हम दोनों की ही निंदा हो सकती है। इसलिए यहाँ रहना योग्य नहीं है।

यह कहकर बिना आहार किये ही वे वापस चले गए। चौथे दिन वे और दूसरे स्थान में गये वहाँ उन्होंने उस यक्षिणी के द्वारा निर्मित नगर को देखा वहाँ एक घर पर वे आहार करके आ गये। आज निरंतराय भोजन प्राप्त हो जाने का भी वृतान्त उन्होंने गुरुसे कह दिया गुरुने भी कह दिया कि अच्छा किया। इस प्रकार वे इच्छानुसार कभी उपवास रखते और कभी वहाँ आहार ग्रहण करके आ जाते इस प्रकार चन्द्रगुप्त मुनि, गुरुदेव की सेवा करते हुए वहाँ स्थित रहे। कुछ ही दिनों में भद्रबाहुस्वामी स्वर्गवासी हो गए।

चन्द्रगुप्त मुनि ने उनके निर्जीव शरीर को किसी ऊँचे स्थान में एक शिला के ऊपर रख दिया। फिर वे गुफा की भित्ती के ऊपर गुरु के चरणों को लिखकर उनकी आराधना करते हुए वहाँ स्थित रहे। इन चन्द्रगुप्त मुनि ( प्रभाचन्द्रचार्य ) की गुरुसेवा ने ही चन्द्रगुप्त मौर्य को इतिहास में अजर-अमर बना दिया।

अतः सभी को संत समागम रूप सेवा प्राप्त करना चाहिए अभी भी श्रमण ( श्रवण ) बेलगोला, गोमटेश्वर बाहुबली तीर्थ में चन्द्रगुप्तवसदी व चन्द्रगुप्त-गुहा इन सब बातों की साक्षी है।